ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(12): 447-449
www.allresearchjournal.com
Received: 12-09-2021
Accepted: 18-10-2021

फुल कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
फुल कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

जिन लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ: विभाजन की त्रासद अभिव्यक्ति

फुल कुमारी

सारंश:
असगर वजाहत रचित यह नाटक हिन्दी के उन विशिष्ट नाटकों में सम्मिलित है, जो अपनी रचना के बाद लगातार मंचित और प्रशंसित होता रहा है। इस नाटक को मंचन हिन्दी ही नहीं गैर हिन्दी प्रदेशों में भी हुआ है। इसका कारण रहा है इसका शिल्प और कथ्य। सर्वज्ञात है कि किसी भी कला-माध्यम में कथ्य (वस्तु) और रूप का अन्योन्याश्रय संबंध होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कला अपने कथ्य के अनुरूप अपना रूप ग्रहण करती है, वो श्रेष्ठ कला का उदाहरण मानी जाती है। तात्पर्य यह है कि कथ्य ही कला के रूप के निर्धारण का स्रोत हो तो वो स्थिति बेहतर मानी जाती है।

कूट शब्द: असगर वजाहत रचित, कला-माध्यम, (वस्तु) और रूप क

भूमिका:
"जिन लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ' के कथ्य की बात करें, तो यह नाटक सांप्रदायिकता और धार्मिक कट्टरपन के कारण हुए भारत-पाकिस्तान के विभाजन के पश्चात के लाहौर में बची रह गई एक बेवा बुजुर्ग महिला की कहानी कहता है। इस नाटक की जरिये नाटककार ने भारत-पाकिस्तान के बँटवारे को अतार्किक बताया है और उस पर गंभीर सवाल उठाए हैं। नाटककार ने दर्शाया है कि कैसे चंद धार्मिक कट्टरपंथियों के कारण देश ही नहीं ईंसानियत के भी टुकड़े हो गए है; जबकि यह दोनों समुदाय गंगा-जमुनी संस्कृति की तरह आपस में प्यार से रह सकता है। नाटक के जरिये इंसानियत को ही सबसे बड़ा गुण बताया गया है और धार्मिक रूढ़िवाद और कट्टरता को कटघरे में खड़ा किया गया है। नाटक का ट्रीटमेंट काफी हद तक यथार्थवादी है।"[1] पात्रों संवादों व नाटकीय परिस्थितियों को यथार्थवादी तरीके से पेश किया गया है। वहीं दो दृश्यों के मध्य के अंतराल में पाकिस्तानी शायर नासिर काजमी की शायरी का इस्तेमाल किया गया है, जो इस नाटक में एक महत्त्वपूर्ण पात्र की तरह भी शामिल हैं। यह योजना नाटक प्रस्तुति के लिहाज से तो उपयुक्त नजर आती है, क्योंकि एक दृश्य से दूसरे दृश्य के बदलाव में यह सहायक सिद्ध होती है और साथ ही साथ दर्शकों को एक भाव भी प्रदान करती हैं, लेकिन कथ्य और रूप की एकरूपता के संदर्भ में अगर बात करें तो यह एक स्तर के बाद खटकने लगती है, क्योंकि नाटक का बाकी कार्य व्यापार जहाँ यथार्थवादी (लोकधर्मी) आग्रह लिए हुए हैं, वही दो दृश्यों के बीच में शायरी और गजलों का इस्तेमाल प्रदर्शनमूलक (नाट्यधर्मी) है।

दो वर्गों (नाट्य चिंतक और आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में नाटक को प्रदर्शन के आधार पर इन्हीं दो वर्गों में बाँटा है) का एक साथ निबाह नाटक के पाठ में भिन्नता पैदा करता है। यह इस नाटक के पाठ की एक कमजोरी है। बेहतर होता कि नाटककार ने इस नाटक में विशुद्ध यथार्थवादी शैली का निवाह किया होता। यह इसके कथ्य को और भी मजबूती प्रदान करता। "इस नाटक का प्लाट भी अत्यंत प्रभावी तथा कथ्य को आकर्षक बनाने में मददगार सिद्ध होता है। नाटक की घटनाएँ निरंतर परिवर्तित होती रहती हैं और इससे नाटक में गति बनी रहती है। नाटक का आरंभ, मध्य और अंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है और यह नाटक अपने आरंभ से ही आपको न केवल चौंकाता है, बल्कि आपकों निरंतर नए घटनाक्रम के लिए तैयार भी करता है। नाटककार ने इसके आरंभ से लेकर मध्य और अंत तक कहानी का बढ़िया निर्वाह किया है। एक पाठक और दर्शक के तौर पर आप इसके साथ लगातार जुड़े चले जाते हैं। यह नाटक एक बार नहीं, बल्कि कई बार अप्रत्याशित झटका आपको देता है। यही इस नाटक के प्लाट की खासियत है।"[2] नाटक की आरंभ में ही जब तक मिर्जा साहब का परिवार, घर पाने की खुशी मना सकता, उसके पूर्व ही रतन की बेबा माँ का अवतरण उनके साथ ही पाठकों के मन में भी खलबली मचा देता है। वहीं जब मिर्जा का परिवार उन्हें जान से मरवाने की सुपारी पहलवान को देता है, तब पाठक को बेबा की जान की फिक्र सताने लगती है, लेकिन तभी देखते हैं कि मिर्जा का परिवार बेबा से घुल-मिल गया है और हमीदा बेगम तो ऐसे किसी प्रस्ताव को सिरे से खारिज कर देती है। उधर जब तक पाठक बेबा की और से निश्चित होता है, तब तक बेबा घर छोड़कर जाने लगती है और इससे राहत मिलती है और लगता है कि अब सब ठीक है तो उनकी मौत की खबर आ जाती है। घटनाक्रम में यह सब फेरबदल इतन तेजी से होते हैं कि दर्शक और पाठक कई बार हतप्रभ तरीके से इसे देखते हैं। इस तरह यह नाटक पाठकों को कई बार चौंकाता है। इस लिहाज से यह नाटक बहुत ही ताकतवर है और यही इस नाटक की सबसे मजबूत पक्ष है।

आलोच्य नाटक के कथ्य को कुछ बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा सकता है।–

सर्वविदित है कि 15 अगस्त 1947 को हमारा देश स्वाधीन हुआ। परंतु इसके साथ ही अखंड भारत धर्म के नाम पर दो टुकड़ों मे विभक्त हो गया। हिन्दुस्तान बनाम हिन्दुओं का देश। पाकिस्तान मुसलमानों का। हिन्दुओं और मुसलमानों के भीतर के सांप्रदायिक उन्माद ने न केवल राष्ट्र को खंडित किया, बल्कि मानवता भी तार-तार हो गई। खून की होलियाँ खेली जाने लगीं। उन्मादी लोगों ने निरीह हिन्दू और मुसलमान को शिकार बनाया। विभाजन के पश्चात जो दंगें हुए, उनमें वे लोग शिकार बनाए गए, जो कहीं से भी विभाजन नहीं चाहते थे। घोर सांप्रदायिकता की वजह से हिन्दू लोग मुसलमानों को मल्लेछ समझते हैं, तो इसके उलट मुसलमान की दृष्टि में हिन्दू काफिर हैं। अतिशय धार्मिकता के कारण ही दोनों अविवेकी हो गये थे। हत्या और बलात्कार जैसे जघन्य अपराध आम बात हो गई थी।

1947 का इतिहास सच में हमारा इतिहास भी है और वर्तमान भी। हम अभी तक उससे उबड़ नहीं पाए हैं। ऐसा त्रासद अतीत जो बीतकर भी नहीं बीतता है। जो जिन्दा रहता है सदैव हमारे भीतर में। धर्म बनाम राजनीति, सांप्रदायिक उन्माद, जोश, स्वार्थ और मोह से उत्पन्न अमानवीय स्थिति मानव-विरोधी कारनामे। इस यथार्थ को आधार बनाकर लिखा गया नाटक है...'ओ जम्याइ नई'।

इस नाटक के केन्द्र में है विभाजन के समय का लाहौर। लाहौर में यह कहावत प्रसिद्ध थी कि 'जिन लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ'। इस नाटक में ऐसे परिवार की कथा है जो विभाजन के दौरान शरणार्थी बना दिये गये। सिकंदर मिर्जा जो कि परिवार का मुखिया है। उसे परिवेश घर, संपत्ति, उद्योग-धंधे सब कुछ लखनऊ में छोड़कर अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर भागना पड़ा। उस भागदौड़ में अत्याचारियों ने उन पर कई तरह के कहर दाएँ। लूटा उन्हें फिर बेबश और बेसहारा होकर वे महीने पड़े रहे। वे अपनी जो संपत्ति लखनऊ में छोड़ आए, उसके एबज में उन्हें कस्टोडियन वालों द्वारा लाहौर में रतन जोहरी की हवेली एलॉट हुई। हवेली में रतन जौहरी की बेहद बूढ़ी माँ बची रह गई है, जिन लाहौर की जमीन से बेइन्तहा मुहब्बत है। उसका यह विश्वास था कि रतन जौहरी कभी वापिस आयेगा। वह कदापि स्वीकार नहीं कर पाती है कि उसका बेटा दंगे के दौरान मारा गया। वह अपने घर को किसी भी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहती है। मिर्जा किसी भी प्रकार माँ को समझाकर हबेली छुड़वाने की कोशिश करता है, लेकिन, उन्हें सफलता नहीं मिलती है। आखिरकार वह स्त्री सबकी सहानुभूति पाती है। उदारवादी मुसलमानों का हृदय जीतकर सबकी 'माई' बन जाती है।

लेकिन असामाजिक तत्त्व तथा उन्मादी लोगों को यह बरदास्त नहीं होता है, वह उसे पाकिस्तान भेजना चाहते हैं। बाद में 'माई' को लगता है कि उसके रहने से मिर्जा साहब और उसके परिवार पर संकट आ सकती है, वह स्वयं लाहौर का त्याग कर

भारत जाना चाहती है, लेकिन लोगों के प्यार ने उसे ऐसा बांधा कि अंतत- वह मृत्यु को वरण करती हैं।

इस नाटक में हिन्दु तथा मुसलमानों के विस्थापन की पीड़ा को मानवीय संवेदना के साथ अभिव्यक्त किया गया है। आखिरकार अपने घर, परिवार, समाज, परिवेश, परंपरा, संपत्ति से अलग होने की पीड़ा किस तरह उन्हें सताती है। इस नाटक में बखूबी देखा जा सकता है। पाकिस्तानी इलाकों से भारत की, और यहाँ से पाकिस्तान की और भी शरणार्थियों की भीड़ लगी रही। इनके साथ जनता का व्यवहार बदलता रहा। विभाजन के बाद जिन मुसलमानों को लगा कि वे पाकिस्तान में ही सुरक्षित रह सकते हैं। वहीं उनका मुल्क हैं, वे भारत छोड़कर पाकिस्तान चले गए, लेकिन सारे मुसलमान वहाँ जम नहीं पाए, कई परिवारों को पुन: भारत लौटना पड़ा, जो अब उसके लिए पराया मुल्क हो चुका था। ऐसे लोग शरणार्थी हो गए। साथ ही पाकिस्तान के हिन्दू भारत आ गए, लेकिन यहाँ उन्हें स्थान न मिल पाया, ऐसे हिन्दू भी विस्थापन के दर्द को अब तक भोग रहे हैं। पर कटे पंछियों की भाँति उनकी स्थिति हो गई। नाटक का एक संदर्भ मर्म को रेखांकित करता है- 'देखिये आप हमारी मजबूरी को समझिए... हम वहाँ से लुटे-पिटे आए हैं....मालो दौलत लुट गया....बेसहारा और बेमददगार यहाँ के कैम्प में महीनों पड़े रहे...खाने का ठीक न सोने का ठिकाना। अब खुदा करके हमें ये मकान एलॉट हुआ है...अपने लिए न सही बच्चों की खातिर ही सही अब लाहौर जाना है। लखनऊ में मेरा चिकन का कारखाना था। यहाँ देखिए अल्लाह किस तरह रोजी-रोटी देता है।"[3]

उपरोक्त संदर्भ से विस्थापन की पीड़ा को बखूबी समझा जा सकता है। ऐसे लाखों लोगों की पीड़ा जो कहीं के न रहे। न घर का न घाट का।

आलोच्य नाटक में मिर्जा साहब को जो मकान हस्तगत कराया गया है, वास्तव में उसकी असली हकदार रतन की माँ है, जो कि एक सीधी सादी हिन्दू स्त्री है। उसकी धार्मिक आस्था उनके भीतर मानवीय संवेदना को उत्पादित करती है। वह सबके साथ प्रेम भाईचारे के साथ रहना चाहती है।

इस नाटक में मुहल्ले का मौलवी भी लोगों को बताता है कि इस्लाम का वास्तविक स्वरूप कितना उदार, सहिष्णु और मानवीय है। वह कहता है कि हिन्दू और इस्लाम-धर्म केवल अलग-अलग मार्ग है। सच में दोनों का संदेश एक ही है। उनका कथन है- "भई हदीस शरीफ है कि तुम दूसरों के खुदाओं को बुरा न कहो, ताकि वह तुम्हारे खुदा को बुरा न कहे, तुम दूसरों को मजहब को बुरा न कहो, ताकि तुम्हारे मजहब को बुरा न कहें। बेटा इस्लाम ने बहुत हक ऐसे दिए हैं, जो तमाम इंसानों के लिए हैं....उसमें मजहब, रंग, नस्ल और जान का कोई फर्क नहीं किया गया।"[4]

आलोच्य नाटक विभाजन की राजनीतिक त्रासदी का मानवीय तथा मनोवैज्ञानिक दस्तावेज प्रस्तुत करता है। लेखक ने धर्म और संप्रदाय के उन्माद के बीच मानवीय संवेदना को कुंद होने से बचाया है। नाटक के भीतर से नासिर तथा अलीम के संवाद को यहाँ उद्धृत किया जा सकता है-

नासिर: 'देखा तुम क्या इसलिए मुसलमाना हो कि जब तुम समझदार हुए तो तुम्हारे सामने हर मजहब की तालीमात रखी गयी और कहा गया कि इसमें जो मजहब, तुम्हें पसंद आए, अच्छा लगे, उसे चुन लो?

अलीम: नहीं नासिर साहब...मैं तो दूसरे मजहबों के बारे में कुछ नहीं जानता।

नासिर: इसका मतलब है, तुम्हारा मजहब है, उसमें तुम्हारा कोई दखल नहीं है...तुम्हारे माँ बाप का जो मजहब था, वही तुम्हारा है।

अलीम: हाँ जी बात तो ठीक है।

नासिर: तो यार जिस बात में तुम्हारे कोई दखल नहीं है, उसके लिए खून बहाना, कहाँ तक जायज है?"[5]

साहित्यकार का उद्देश्य होता है विषमता में समता, अलगाव में एकता, उन्माद में शांति और सांप्रदायिकता में सदभाव की स्थिति उत्पन्न करना। असगर वजाहत एक ऐसे ही लेखक हैं, जिसने अत्यंत उदार दृष्टिकोण का प्रयोग करते हुए भारत की सामासिक संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने पर जोर दिया है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची:

1. बनास जन-जनवरी-मार्च, 2017, अंक 21, वर्ष-6, संपा. पल्लव, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 252
2. साहित्य का सामाजिक मूल्य-डॉ. हदयाल, मयूर प्रकाशन, नयी दिल्ली 1990 ई., पृ. 91
3. असगर वजाहत के आठ नाटक-वजाहत, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली 2016, पृ. 254ई.
4. वही, पृ. 238-239
5. गोडसे@गांधी.कॉम-असगर वजाहत, (आठ नाटकों में संकलित) पृ. 41